

सप्तम अध्याय

नाट्यकारों तथा संगीतकारों का
योगदान

VII नाट्यकारों तथा संगीतकारों का योगदान

7.1 ब.व. कारंत

एक कुशल अभिनेता, लेखक, प्रशिक्षक, निर्देशक, निर्माता, रंग संगीत के प्रति अगाध प्रेम रखने वाला, भारतीय रंग परिदृश्य के सुविख्यात एवं वरिष्ठ रंगकर्मी ब.व. कारंत का जन्म केरल-कर्नाटक की सीमा पर स्थित तटीय मंगलूर क्षेत्र के छोटे से गाँव मंची के एक निर्धन परिवार में 29 सितम्बर, 1928 को हुआ। इनके पिता नारायणप्पा एवं माता लक्ष्मम्मा थे, जिन्होंने इनका नाम-बाबूकोड़ी व्यंकट रामन कारंत रखा। गरीब परिवार में जन्मे कारंत ने तीसरी कक्षा से ही अभिनय करना शुरू कर दिया था। उन्होंने उस समय अध्यापक रामचन्द्र भट्ट के निर्देशन में 'भागवत और पंडित की मुठभेड़' नामक नाटक किया। आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण आठवीं पास करते ही पिता ने आगे की असमर्थता व्यक्त करते हुए उन्हें अपनी ही भाँति जमींदार के यहाँ अध्यापक नियुक्त करवा दिया।



ब.व. कारंत

अपनी माता द्वारा हरिकथा, लोरियों तथा तुलसी की परिक्रमा के समय गाए गीतों को कारंत जी ध्यान से सुनते थे। इसके साथ-साथ इनके चाचा रामायण तथा महाभारत का सस्वर पाठ किया करते थे। इनका जिला यक्षगान के लिए प्रसिद्ध था। अतः अपने आसपास के वातावरण से ही इन्हें लोकसंगीत, लोकनाट्य तथा लोक साहित्य की जानकारी प्राप्त हो गई थी। स्वाध्याय में रुचि होने के कारण इन्होंने कन्नड़, हिन्दी, संस्कृत एवं संगीत का खूब अध्ययन किया।

संगीत सीखने के उद्देश्य से कारंत छोटी उम्र में धर छोड़कर मैसूर चले गए तथा गुब्बी कम्पनी में शामिल हो गए। जहाँ इन्होंने मुनिअप्प के सान्निध्य में हारमोनियम सीखा था, इस कम्पनी में रहकर इन्होंने कर्नाटक संगीत, हिन्दुस्तानी संगीत, शास्त्रीय संगीत, गज़ल, कब्बाली, भजन, लोक संगीत तथा पश्चिमी संगीत के विषय में जानकारी प्राप्त की।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से सर्वोत्कृष्ट छात्र के रूप में आपको भरत पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके साथ-साथ 1976 में नाटक के प्रति लगाव होने के कारण कारंत जी को केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी ने इन्हें सर्वश्रेष्ठ निर्देशक के रूप में सम्मानित किया तथा 1981 में इन्हें

पद्मश्री की उपाधि से विभूषित किया गया। इसके साथ-साथ मध्य प्रदेश सरकार ने इन्हें 'कालिदास सम्मान' तथा कर्नाटक सरकार ने उन्हें 'गुब्बी वीरन्ना' पुरस्कार से सम्मानित किया।

पद्मश्री स्व. ब.व. कारन्त ने अपनी विश्व प्रसिद्ध प्रस्तुतियों से अपने बाहर से नितान्त आत्मीय और सामान्य लेकिन भीतर से अत्यंत मौलिक, असामान्य व्यक्तित्व से संपूर्ण भारतीय रंगमंच में नये प्रतिमान स्थापित किये हैं। ब.व. कारन्त के व्यक्तित्व में जो गहराई, जो सादगी, हमेशा खोजती आँखों में जो बेचैनी और जीवन से, मनुष्य से, प्रकृति से राग मिला, वही इस अनन्त जगत में सीखने की, चलते रहने की प्रेरणा देता है। जो हिन्दी और भारतीय रंगमंच के लिए बहुत बड़ी देन है उनके व्यक्तित्व की सादगी और गम्भीरता उनके रंगकर्म में, प्रस्तुतियों में भी थी।

जब भी किसी ने दूरदर्शन के प्रभाव और रंगमंच की मृत्यु की आशंका व्यक्त की— उनका उत्तर हमेशा यही था कि समय-समय पर रंगकर्म की खामोशी को रंगकर्म का मरना नहीं कहा जा सकता। रंगमंच मानवीय है इसीलिए जीवित है।

श्री ब.व. कारन्त राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्र रह चुके हैं, हिन्दी रंगमंच को वर्तमान स्वरूप देने में ब.व. कारन्त जी की भूमिका प्रमुख रही है। समीक्षक को रंगमंच की तकनीकी जानकारी होनी चाहिए और उसे पूर्वाभ्यासों से लेकर प्रदर्शन तक नाटक से जुड़े रहकर, निर्देशकीय दृष्टिकोणों को समझकर, दर्शकों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

रंग-संगीत के सम्बन्ध में विचार :

कारन्त जी को रंग-संगीत का जनक माना जाता है। नाटक के लिए संगीत रचना करते समय कारन्त जी मात्र वाद्यों का स्वर ही नहीं अपितु सार्थक तथा निरर्थक सभी ध्वनियों का प्रयोग करते थे। कारन्त जी लय का रूप निर्धारित करने के लिये वाद्य यन्त्रों के स्थान पर आलाप, गुंज, स्वर, बोल और ताल का प्रयोग अधिक करते थे। साथ-साथ ध्वनि संयोजन के लिए वे प्रायः ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करते थे, जो सामान्य अर्थों में न वाद्य है और न संगीत पैदा करती है, जैसे-पत्थर, लकड़ी के टुकड़े, लकड़ी का फट्टा, माचिस की डिब्बियाँ आदि। कारन्त जी का संगीत सभा का सामान्य गायन वादन नहीं था। वह ध्वनिमूलक था, स्वरमूलक था, परन्तु रागमूलक नहीं था। उसका अपना स्वरविधान था, जिसके आधार पर वह रंग-संगीत की रचना करते थे।

कारन्त जी रंग-संगीत को नाटक के लिये अत्यधिक अनिवार्य मानते थे। वे रंग-संगीत को दर्शकों के मन में भाव उत्पन्न करने का प्रमुख स्रोत मानते थे। कारन्त जी का संगीत अत्यधिक मौलिक, सशक्त तथा नाटकीय तत्वों से परिपूर्ण संगीत था।

कारन्त जी रंग-संगीत की प्रमुख विशेषता थी कि वह रंग संगीत को कीमाओं में न बाँधकर उनमें भिन्न-भिन्न वाद्यों, स्वरों, तालों, लय तथा ध्वनियों का प्रयोग करते थे। वे नाटक के लिये बेसुरा तथा बेताला संगीत भी महत्वपूर्ण मानते थे; क्योंकि ऐसा बेसुरा, बेताला संगीत समाज के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। 1979 मंचित 'अमल विमल और कमल' नाटक में उन्होंने

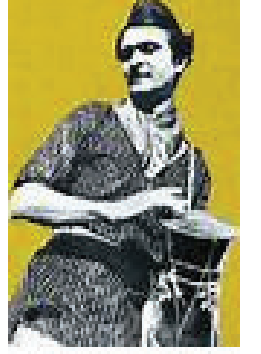
नाटक का संगीत क्या होता है और क्या होना चाहिए को स्पष्ट समझाया है। नाटक संगीत में विविधताओं का समावेश कर उन्होंने भिन्न-भिन्न नाटकों में भिन्न-भिन्न वाद्ययंत्रों, जैसे- 'अन्धेर नगरी' में मंजीरे का तथा मालविकाग्निमित्रम में पखावज का प्रयोग किया। वह जिस उमंग तथा उछाल में लोक जीवन की लय को, उसकी मादक, संगीतमय, संवेदनाओं को रंग-संगीत में चित्रित करते थे, वह एक अत्यंत सराहनीय कदम था। कन्नड़ का प्रसिद्ध नाटक- 'गोकुल निर्गम' तथा नीलम मानसिंह द्वारा निर्देशित नाटक 'यरमा', कारंत जी के रंग-संगीत का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

कारंत जी मानते थे कि थियेटर का संगीत रागदारी नहीं, बल्कि एक तरह से स्वरकारी है, तालकारी नहीं लयकारी है।

“Life is very short, enjoy every moment of life.” के सिद्धांत को अपनाते हुए 1 सितम्बर, 2002 को यह सांगीतिक रंगकर्मी इस संसार को अपनी अमूल्य भेंट देकर विधाता के चरणों में लीन हो गया। रंग-संगीत सदैव उनका आभारी रहेगा।

7.2 मोहन उप्रेती

एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी, मौलिक संगीतकार, श्रेष्ठ गायक, प्रबुद्ध विचारक, लोकगीत विशेषज्ञ, कल्पनाशील निर्देशक, प्रखर शोधार्थी मोहन उप्रेती जी का जन्म 6 जुलाई, 1928 को उत्तरांचल में हुआ। पहाड़ी क्षेत्र में जन्म होने के कारण प्रारंभ से ही इनका ध्यान पहाड़ी लोकधुनों ने आकर्षित किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. की शिक्षापूर्ण होने के पश्चात् अपनी सांगीतिक रुचि को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से इसी विद्यालय में इन्होंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में सीनियर डिप्लोमा किया। प्रगतिशील विचारधारा वाले मोहन उप्रेती जी में देशप्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी थी। इसी के कारण इन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा, परन्तु इन्होंने संगीत का साथ नहीं छोड़ा तथा नियमित रूप में वहाँ भी रियाज करते रहे। नाटक के माध्यम से लोगों में देशप्रेम तथा जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से भी उप्रेती जी अपने जीवन काल में भिन्न-भिन्न नाट्य संस्थाओं से जुड़े रहे, जैसे-इप्टा (1948-58), उत्तर प्रदेश लोकसाहित्य कमेटी (1954-58), केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी (1986-88) आदि। इसके साथ-साथ उन्होंने पर्वती कला केन्द्र के अध्यक्ष पद पर भी कार्य किया। उप्रेती जी ने जहाँ एक तरफ कुशल अभिनेता के रूप में अपनी छवि लोक मस्तिष्क पर अंकित की, वहीं दूसरी तरफ इनके द्वारा निर्देशक नाटक भी अत्यन्त लोकप्रिय हुए, जैसे- “Towards 21st century”, वन्दे मातरम्, ‘Rose Folwer’, ‘मेघदूत’, ‘रामलीला’, ‘गंगा’ आदि। उप्रेती जी ने अल्जीरिया, जार्डन, मिश्र, सीरिया, चीन, थाईलैंड आदि 22 देशों की यात्रा की। समय-समय पर उप्रेती जी को नाटक जगत में विशेष योगदान हेतु सम्मानित भी किया गया। जहाँ सर्वश्रेष्ठ निर्देशन के लिए इन्हें लोकनृत्य के लिए सम्मानित किया गया। संगीत नाटक अकादमी 1987 में इन्हें सुमित्रानंदन पंत पुरस्कार तथा 1994 में ‘यश भारतीय सम्मान’ भी प्रदान किया गया।



मोहन उप्रेती

रंग-संगीत के विषय में विचार :

एक समाजवादी विचारधारा वाला व्यक्ति होने के कारण उप्रेती जी के जीवन से संगीत स्वतः ही जुड़ा हुआ था। संगीत के प्रति लगाव का एक कारण इनका आसपास का वातावरण भी था, जिसने उप्रेती जी को पहाड़ी लोकधुनों के विषय में अवगत करवाया। एक लोक कलाकार होने के पश्चात् भी उप्रेती जी ने शास्त्रीय संगीत के महत्व को स्वीकारा है। उनका मानना है कि शास्त्रीय संगीत-संगीत का व्याकरण है, जिसको सीखे बिना एक अभिनेता संगीत में उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि उन्होंने रंग-संगीत का निर्देशन करते समय उसे सीमाओं में नहीं बाँधा। यही स्वतन्त्र प्रवृत्ति इनके रंगसंगीत की प्रमुखता भी मानी जा सकती है। जहाँ उन्होंने

भगीरथ जैसी नृत्य नाटिका का संगीत निर्देशन किया, वहीं दूसरी तरफ 'लोककथा आज की', 'धासीराम कोतवाल', 'अंधायुग', 'आखिरी किताब', 'मुद्रा राक्षस', 'स्कन्दगुप्त' आदि नाटकों में भी संगीत दिया। केवल भारतीय परम्परा तक ही सीमित न रहकर उप्रेती जी ने विदेशी संगीत का भी समायोजन अपने नाटकों में किया जैसे—उत्तरामचरितम् के अन्तर्गत उप्रेती जी ने पाश्चात्य संगीत के अनुरूप संवादीय सुरों का प्रयोग किया।

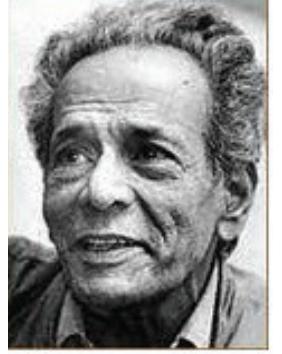
पर्वतीय प्रदेश से जुड़ाव होने के कारण उप्रेती जी के संगीत में लोकधुनों तथा लोकनृत्यों का भी भरपूर प्रयोग देखने को मिलता है।

उप्रेती जी का मानना है कि संगीत में भाव प्रदर्शित करने की भरपूर शक्ति होती है, संगीत एक व्यक्ति को हँसा भी सकता है और रूला भी सकता है। अतः अभिनेता को संगीत की शक्ति से अवगत होना चाहिए, ताकि वह दर्शकों पर अपने अभिनय का संगीत के साथ समायोजन पर सटीक प्रभाव छोड़ सके।

मोहन जी का संगीत गोधूलि की भाँति था, जो चमकदार असरदार तथा अपने आप में बदलता हुआ, नवीनता लिए हुए है। इसी विलक्षण प्रतिभा के धनी अपनी अमूल्य भेंट नाटक जगत को सौंपकर 6 जून, 1997 को संगीत जगत को अपनी महान भेंट देकर विधाता के चरणों में सदा के लिए लीन हो गए।

7.3 हबीव तरवीर

“मेरा तो विछौना-ओढ़ना थियेटर ही है”- हबीव तनवीर द्वारा कहे गए ये शब्द मानों हबीव तनवीर के सम्पूर्ण जीवन को प्रतिबिम्बित कर देते हैं। इन्होंने अपने नाटकों की विषय वस्तु में लोककथा तथा बोली और प्रदर्शनों में लोकगीत, संगीत तथा अभिनय शैलियों का सृजनात्मक प्रयोग किया है। आपने लोक कथाओं तथा संगीत का प्रयोग ब्रेरन्ट, मोलियर व संस्कृत नाटकों में भी कुशलता से किया है। आप सत्तीसगढ़ी बोली में अभिनय के प्रेमी हैं। लोक संगीत की भरपूर जानकारी रखने वाले, नाटक को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाने वाले हबीब तरवीर का जन्म 1 सितम्बर, 1923 को रायपुर में हुआ। इनकी माता मध्यप्रदेश की थीं। हबीब जी ने मैट्रिक की शिक्षा लारी म्यूनिसिपल हाई स्कूल से तथा बी. ए. की शिक्षा नागपुर के मॉरिस कॉलेज से ग्रहण की, एवं उच्च शिक्षा के लिए अलीगढ़ चले गए; लेकिन रंगमंच में रुचि होने के कारण पढ़ाई पूरी किए बिना ही मुम्बई चले गए, जहाँ इन्होंने यूरोप के नाटकों के विषय में जानकारी प्राप्त की, तथा “नियमित रूप से शायरी शुरू की और अगले बरस, 1946 में वे बम्बई से प्रकाशित ‘फिल्म इण्डिया’ मासिक में सहायक सम्पादक का काम करने लगे। अगले कुछ वर्षों में उन्होंने कुछ और पत्रिकाओं का सम्पादन किया। 1946-53 तक इप्टा, बम्बई के नाटकों में अभिनेता निर्देशक के रूप में जुड़े रहे। तत्पश्चात् 1954 में वापिस दिल्ली लौट आए। और दिल्ली में उन्होंने वहाँ के पहले पेशेवर रंगमंडल ‘हिन्दुस्तानी थियेटर’ की स्थापना की। हबीब तनवीर बचपन से ही नाटक किया करते थे। उन्होंने अपना पहला नाटक बलराज के निर्देशन में किया, जो कश्मीर की आजादी से जुड़ा डोगरा आन्दोलन से सम्बन्धित था। 1955 में वे अभिनय की शिक्षा के लिए राडा (रॉयल अकडमी ऑफ ड्रेमेटिक आर्ट्स) लंदन चले गये। इंग्लैण्ड में ही 1956 में उन्होंने ब्रिस्टल के ‘ओल्ड पिक थियेटर स्कूल’ में निर्देशन और रंगनिर्माण का विधिवत प्रशिक्षण लिया। अगले तीन वर्षों तक वे यूरोप के कई शहरों में वहाँ की रंग-गतिविधियों को देखने के लिए भटकते रहे। इन्हीं दिनों वे यूरोप की लोकरंगकला के निकट आये। 1959 में भारत लौटकर उन्होंने मोनिका मिश्रा के साथ नया थियेटर की स्थापना की। मोनिका जी जो बाद में हबीव साहब की पत्नी बनी। यूरोप से लौटकर उन्होंने शूद्रक का ‘मृच्छकटिकम्’ हिन्दुस्तानी जुबान में ‘मिट्टी की गाड़ी’ नाम से किया। हबीब तनवीर ने लम्बा जीवन जिया। 8 जून 2009 को हबीव तनवीर की खरखराती हुई मंद आवाज चुप हो गयी। वे लम्बे समय तक अस्पताल में भर्ती रहते के बाद चल बसे। वे पचासी वर्ष के थे लेकिन लम्बी आयु उनकी उपस्थिति को हमारे बीच स्थायी नहीं बनाती। भारतीय रंगमंच के तो वे शिखर पुरुष थे ही, लेकिन जिस ढंग से उन्होंने जीवन जिया, संघर्ष के थपेड़े खाये, अपना-आपा खोये बिना चुनौतियों का सामना किया और सबसे बढ़कर उन्होंने अपने हाथों अपना जो भिन्न परिवेश रचा, वही उन्हें जीते जी अमर कर गया।



हबीव तनवीर

इसके बाद तो हबीब तनवीर का जीवन नाटक जगत् के लिए ही समर्पित हो गया। हबीब तनवीर के नाटकों में मुख्यतः दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं-

1. मौलिक
2. आधारित

उन्होंने संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया, जिसमें 'मृच्छकटिक' नाटक का अनुवाद 'मिट्टी की गाड़ी' प्रमुख है। इन्होंने बहुत से नाटकों का निर्देशन भी किया। इनके प्रमुख निर्देशित नाटक हैं— 'शांतिदूत कामगार' (1948), 'इन्द्र लोकसभा' (1971), 'कुश्तिचा का चपरासी' (1971), 'देवी का वरदान' (1981), 'मगलू दीदी' (1986), 'आगरा बाजार' आदि। नाटक जगत में विशेष योगदान हेतु आपको 1982 में पद्मश्री, 1983 में इंदिरा कला विश्वविद्यालय खैरागढ़ द्वारा डी. लिट., 1984 में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 'शिखर सम्मान', 1990 में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 'कालिदास' सम्मान इत्यादि से सम्मानित किया गया।

रंग-संगीत के विषय में विचार :

हबीब तनवीर नाटक के लिए संगीत को महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि प्रारंभिक वर्षों में संगीत और नृत्य नाटक का अन्तिम अंग थे। यह परम्परा बीसवीं शताब्दी के तीसरे-चौथे दशक तक चली, पाँचवें दशक तक आते-आते यह प्रथा कम हो गई है, परंतु यह सर्वमान्य है कि नाच-गानों से ही रस (आनंद) प्रदान होता है। रंग-संगीत हेतु हबीब जी ने लोकधुनों तथा लय-छंदों को अधिक चुना है। नृत्य-गायन तथा अभिनय के समन्वय को टोटल थियेटर मानने वाले हबीब तनवीर ने अभिनेताओं के लिए नृत्य तथा संगीत सिखने को अनिवार्य माना है। इनके नाटकों में संगीत के साथ-साथ नृत्य भी देखने को मिलता है; जैसे-1958 में 'मिट्टी की गाड़ी' नौटंकी शैली में प्रस्तुत किया गया; जिसमें नृत्य नाटक (बैले) तथा गेय नाटक (ऑपेरा) के तत्व समान रूप से सम्मिलित थे। हबीब तनवीर 'छत्तीसगढ़' की लोक शैली से विशेष रूप से प्रभावित है; जिसकी छवि स्पष्ट रूप से इनके नाटकों में देखी जा सकती है। इन्होंने मंचीय नाटकों के साथ-साथ नुक्कड़ नाटक भी किए। नाटकों में संगीत रचना के साथ-साथ हबीब तनवीर ने 5 स्वरचित गीत जोड़े; जिसे इन्होंने रविन्द्र संगीत, नजरूल गीति और रूस की अक्टूबर क्रान्ति के गीतों के स्वरों पर गवाया। जहाँ एक तरफ तनवीर जी ने कोरस गायन के माध्यम से गीत प्रस्तुत किए हैं, तो दूसरी तरफ रंग-संगीत की परम्परागत लोक शैली के प्रत्यक्ष गायन को भी महत्व दिया है। सामसागर नाटक में हबीब तनवीर ने गायन-वादन-नृत्य तीनों को समान रूप से महत्व दिया। इसमें मुख्य कलाकार गाता भी है, नाचता भी है तथा कथा भी सुनाता है। मुख्य कलाकार के साथी कलाकार वाद्ययंत्र बजाते हैं तथा गायन में सहयोग देते हैं। हबीब तनवीर जी की गज़लों के प्रति विशेष रुचि थी परन्तु वह नाटक में गज़ल गाने की अपेक्षा उन्हें पढ़ने पर विशेष बल देते हैं। इसका कारण यह है कि हबीब जी मानते हैं कि जब गज़ल पढ़ी जाती है, तब उसका अर्थ अधिक अच्छी तरह समझाया जा सकता है।

हबीब तनवीर जी का मानना था कि नाटक के गाने निश्चित रूप से ग्राह्य होते हैं, जिन्हें अभिनेता को पूरी शक्ति के साथ गला खोलकर गाना चाहिए।

हबीब तनवीर के गीतों में एक तारतम्यता सी थी, जो दर्शकों को बाँधे रखती थी। कलाकारों के लिए हबीब तनवीर स्वर, लय तथा ताल की जानकारी को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका मानना है कि नाटक का एक रिदम होता है।

नाट्य-रचना, गीत-रचना, संगीत-रचना तथा नाटक का निर्देशन करने वाले हबीब तनवीर ने अपना सम्पूर्ण जीवन नाटक के चरणों में अर्पित कर दिया है। कारंत जी के शब्दों में कहें तो कहा जा सकता है-

“जितने भी रंग संगीतकार हैं, उनमें पहला नाम हबीब तनवीर साहब का है।” हबीब तनवीर जी ने अपने रंगसंगीत के माध्यम से संगीत तथा नाटक दोनों को ही जन-हृदय तक पहुँचाया है, यथा निरन्तर उसी दिशा में प्रगति कर रहे हैं।

7.4 लोकेन्द्र त्रिवेदी

“भाव, राग, ताल तीनों का सन्तुलित समन्वय ही नाटक है”— लोकेन्द्र त्रिवेदी द्वारा कहे गये ये शब्द मानो नाटक में संगीत के महत्व को स्पष्ट रूप से अंकित कर देते हैं।

इनका जन्म 8 फरवरी, 1956 को उज्जैन में हुआ। पिता कृष्ण दास त्रिवेदी तथा माता सर्वमंगला त्रिवेदी ने इनका पालन-पोषण किया। इनके 12 भाइयों में से मात्र दो का ही जीवित बचन इनके लिए अत्यंत दुख की बात थी; परंतु परिस्थितियों को समझकर वहीं ढंग से समायोजन करना बचपन में ही सीख लिया था, इसी कारण निर्देशन करते समय इन्होंने कभी भी किसी भी नाटक में हार नहीं मानी। इन्होंने विक्रम विश्वविद्यालय से 1977 में तबले में मध्यमा की तथा खैरागढ़ से संगीत (गायन) में मध्यमा की। बी. कॉम. के अध्ययन के समय से ही इनका ध्यान नाटक की तरफ आकृष्ट हो चुका था। नाटक को अपने जीवन का लक्ष्य बनाने के ध्येय को लेकर 1978 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय। उस समय ब.व. कारंत जी के सान्निध्य में इन्होंने नाटकों में संगीत के महत्व को समझा। बचपन से रामलीला में कार्य करने वाले त्रिवेदी जी ने सर्वप्रथम ‘मृच्छकटिकम्’ नाटक में कार्य किया था।



लोकेन्द्र त्रिवेदी

लोकेन्द्र त्रिवेदी मल्लिकार्जुन मंसूर को अपने जीवन का आदर्श मानते हैं। साथ-साथ कुमार गन्धर्व तथा राजेन्द्र प्रसन्ना से भी ये अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने सुशील दास गुप्ता से (Western Music), जो कि पाश्चात्य संगीत तथा आधुनिक संगीत के कुशल ज्ञाता है, संगीत के विषय में ज्ञान प्राप्त किया।

इन्होंने जान मार्टिन, सिसली बैरी, बंसी कोल, राम गोपाल बजाज, भानुभारती, मोहन महर्षि, ब.व. कारंत, देवेन्द्रराज अंकुर आदि सुप्रसिद्ध प्रतिभावान हस्तियों के साथ कार्य किया। इसके साथ-साथ वे ‘आदमी का आ’ नामक नाटक की सात हजार से भी अधिक कुशल प्रस्तुतियाँ कर चुके हैं। ‘जसमा ओढ़न’ की इन्होंने हिन्दुस्तान, जर्मनी, इंग्लैंड, में सवा सौ प्रस्तुतियाँ की हैं।

रंग-संगीत के विषय में विचार :

संगीत को नाटक का प्रमुख तत्व मानने वाले लोकेन्द्र त्रिवेदी जी ने नाटक को संगीत के बिना अधूरा माना है। उनका मानना है कि संगीत भी नाटक भाँति भावप्रदर्शन का माध्यम है। जब-जब नाटक तथा संगीत सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं, तब-तब एक नई शैली विकसित होती है। लोकेन्द्र त्रिवेदी जी ने नाटकों में संगीत के भिन्न-भिन्न रूपों के दर्शन होते हैं। जहाँ एक तरफ उन्होंने पारम्परिक संगीत का समावेश किया, वहीं दूसरी तरफ आधुनिक पाश्चात्य संगीत का भी प्रयोग कर नाटक में चार चाँद लगा दिए। उन्होंने झाँसी की रानी (सुभद्रा कुमारी चौहान), गुणवती (विजय धांधेकर), Servant up to Master (बी.एम.शाह), वल्लभपुर की रूपकथा आदि नाटकों में संगीत दिया, जो अत्याधिक लोकप्रिय हुआ। मशीनीकरण के फिल्मी युग में लोकेन्द्र जी नाटक की सार्थक भूमिका मानते हैं। उनका मानना है कि नाटक एक जीवंत प्रस्तुति है जो दर्शकों पर जीवंत प्रभाव डालती है, इसीलिए उन्होंने अभिनेता के लिए संगीत शिक्षा को

अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। लोकेन्द्र जी का मानना है कि सांगीतिक प्रस्तुति कभी भी निरर्थक नहीं जाती। जन-जन तक नाटक के माध्यम से संगीत के स्वरों में नाटक के उद्देश्य को संजोए, नाटक जगत के लिए अपने जीवन को समर्पित लिए लोकेन्द्र त्रिवेदी जी निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं।

7.5 रत्ना पाणिक्कर

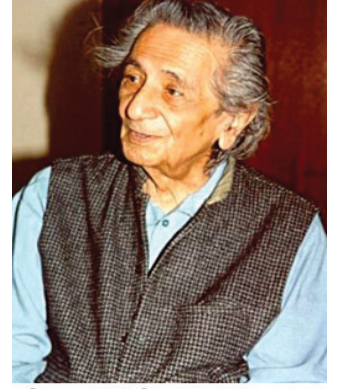
वर्तमान युगीन नाटकों में रंग-संगीत का प्रतिनिधित्व करने वाली रत्ना पाणिक्कर जी का जन्म 17 जून, 1954 को केरल में हुआ। पिता शंकर पिल्लई तथा माता भवानी अम्मा के सान्निध्य में इनका पालन-पोषण हुआ। रत्ना जी के जीवन पर इनके भाई भारगवन् पल्लई का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, जो कि बचपन से ही नृत्य-नाटिकाएँ किया करते थे। अक्सर रत्ना जी अपने भाई के साथ नृत्य नाटिकाएँ देखने जाती थीं, जिसके परिणाम-स्वरूप रत्ना जी की रुचि संगीत के प्रति बढ़ने लगी। अपने सांगीतिक प्रतिभा को निखारने के लिए रत्ना जी ने संगीत में एम.ए. की शिक्षा ग्रहण की तथा अपने जीवन को संगीत जगत के लिए समर्पित कर रत्ना जी दिल्ली आ गई। यहाँ इन्होंने दस साल तक एन.सी.ई.आर.टी. में कार्य किया, जिसके माध्यम से इन्होंने जाना कि एक साधारण मनुष्य के जीवन से संगीत की उपयोगिता के विषय में अत्यधिक ज्ञान प्राप्त हो चुका था।



वर्तमान में रत्ना जी एन.एस.डी. (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) में संगीत आचार्या के पद पर हैं। रत्ना पाणिक्कर जी बचपन से ही नाटकों में संगीत दिया करती थीं। रत्ना जी बहुत से नाटकों का संगीत निर्देशन कर चुकी हैं, जैसे- 'बागड़ बिल्ला', 'पाक के इतिहास', 'सोफोक्लीस', 'आंटी जैनी' आदि। मुख्य रूप से रत्ना जी कारंत जी को अपना आदर्श मानती हैं, कारंत जी की भाँति इनके रंग-संगीत में भी विविधता देखने को मिलती है। मुख्य रूप से भिन्न-भिन्न ध्वनियों का प्रयोग करते हुए मंच पर वास्तविकता उत्पन्न करना रत्ना जी के रंग-संगीत की विशेषता है।

7.6 भीष्म साहनी

“1975 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी के वरिष्ठ रचनाकार भीष्म साहनी 1981 में “एफ्रो एशियाई लेखक संस्थान” के ‘लोटस पुरस्कार’ तथा 1983 में “सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार” के अलावा अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से अलंकृत किए गए हैं। भीष्म साहनी आधुनिक गद्य साहित्य के प्रमुख स्तम्भ हैं। 8 अगस्त, 1915 को रावलपिण्डी के व्यवसायी परिवार में जन्में भीष्म साहनी ने लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एस0ए0 और पंजाब विश्वविद्यालय से पी. एच.डी. करने के बाद पहले अम्बाला, फिर अमृतसर और उसके बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के दिल्ली कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। 1967 में आपका पहला उपन्यास झरोखे प्रकाशित हुआ और तदुपरांत कड़ियां, तमस, बसन्ती तथा ‘मय्यराम की माडी’ सामने आए। अपने स्वर्गीय भाई प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता एवं लेखक बलराज साहनी पर लिखी एक जीवन के अलावा अपने निबंधों की एक पुस्तक तथा कुछ बाल कहानियां भी लिखी। इनके पिता अपने समय के प्रसिद्ध समाज सेवी थे। पिता के व्यक्तित्व की छाप भीष्म पर भी पड़ी।



भीष्म साहनी

स्वाभाविक—यथार्थपूर्ण चरित्रों की जीवन्त सृष्टि, मार्मिक क्षणों की सूक्ष्म पकड़, सहज नाटकीय प्रसंगों की अद्भुत समझ, गहन विडम्बनापूर्ण स्थितियों की अचूक पहचान, रोचक एवं कुतूहलपूर्ण घटनाक्रम की कुशल योजना और तनावपूर्ण मनःस्थितियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने की तार्किक शक्ति जैसी नाट्य-लेखन के लिए सभी प्रमुख विशेषताएँ भीष्म साहनी के कथा साहित्य में आरंभ से ही विद्यमान थीं।

‘इप्ता’ के जरिये नाटक और रंगमंच से भीष्म साहनी का लगाव एवं संबंध आरंभ से ही रहा।

भाषा— भीष्म साहनी हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा उर्दू, संस्कृत, रूसी, पंजाबी भाषाओं के अच्छे जानकार थे।

शैली— भीष्म साहनी जी ने साधारण एवं व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कर अपनी रचनाओं को जनमानस के निकट पहुँच दिया।

विचारधारा— भीष्म साहनी जी को प्रेमचंद्र की परम्परा का लेखक माना जाता है।

भीष्म साहनी का गद्य एक ऐसे गद्य का उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत करता है जो जीवन के गद्य का एक खास रंग और चमक लिए हुए है। उसकी शक्ति के स्रोत काव्य के उपकरणों से अधिक जीवन की जड़ों तक उनकी गहरी पहुँच है। भीष्म को कहीं भी भाषा को गढ़ने की जरूरत नहीं होती। सुझौल और खूब पक्की ईंट की खनक ही उनके गद्य की एकमात्र पहचान है।

7.7 एम.के. रैना

हिन्दी नाट्य जगत के उत्साही रंगकर्मियों में एम. के. रैना का विशेष स्थान है। श्री एम. के. रैना के निर्देशक के रूप में अब तक सत्रह से भी अधिक प्रशिक्षण शिविरों एवं कार्यशालाओं का संचालन किया है। आपके निर्देशन की विशेषताएं लोकरंग तत्वों से युक्त एवं संगीत की लयात्मकता है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली तथा भारतीय रंगमंच विभाग मराठवाड़ा में आप विशेष निर्देशक रह चुके हैं।

श्री एम. के. रैना ने राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त सत्ताइस डाउन में अभिनय भी किया है। रैना रिचुअल थियेटर के पुनरुत्थान के पक्ष में है। आप क्लिष्ट रंगमंच व स्पॉट लाइट से ऊबकर सन लाइट में नाटक करना चाहते हैं।



एम.के. रैना

अभिनेता व निर्देशक श्री एम. के. रैना की कुछ उल्लेखनीय प्रस्तुतियाँ हैं। गौर्की कृत 'लोबर डेप्थस', डॉ० लाल कृत 'व्यक्तिगत', 'एक हरिश्चन्द्र', मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' और 'छातरियां', विजय तेंदुलकर कृत 'खामोश', 'अदालत जारी है', 'वर्टोल्ट ब्रेण्ट कृत 'चाक सर्किल', इन्द्रनाथ सारथी कृत 'औरंगजेब', धर्मवीर भारती कृत 'अंधायुग', बादल सरकार कृत एवं इन्द्रजीत गिरीश कर्नाड कृत 'ययाति' इत्यादि।

संदर्भित ग्रंथ

1. चावला, टीना "हिन्दी नाटक और संगीत" संजय प्रकाशन नईदिल्ली, पृष्ठ सं.-152-153
2. रस्तोगी, गिरीश (2004) "बीसवी शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच" भारतीय ज्ञानपीठ नईदिल्ली, पृष्ठ सं.-221,224
3. श्रीवास्तव, डॉ. आशारानी (2013) "हिन्दी नाटक और रंगमंच" भारत प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ सं.-277-278
4. श्रीवास्तव, डॉ. आशारानी (2013) "हिन्दी नाटक और रंगमंच" भारत प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ सं.-276
5. गुन्देचा, संगीता "नाट्य दर्शन" वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं.-59
6. खां, जावेद अख्तर "हिन्दी रंगमंच की लोकधारा" वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं.-66
7. तनेजा, जयदेव "नई रंगचेतना और हिन्दी नाटककार" तक्षशिला प्रकाशन नईदिल्ली, पृष्ठ सं.-156
8. श्रीवास्तव, डॉ. आशारानी (2013) "हिन्दी नाटक और रंगमंच" भारत प्रकाशन लखनऊ, पृष्ठ सं.-277
9. मलिक, डॉ. शान्ति "हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास" नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
10. माली, डॉ. शिवराम, गोकांककर, डॉ. सुधाकर (1979) "नाटक और रंगमंच" नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
11. गुप्ता, डॉ. जयभगवान "हिन्दी रेडियो नाटक: अघतन अध्ययन" पंचयन पब्लिकेशन्स रोहतक
12. निशांतकेतु (1989) "नाटक और मंच" प्रथम संस्करण, सीमान्त प्रकाशन
13. वशिष्ठ, डॉ. सुरेश (1995) "हिन्दी नाटक और रंगमंच : बेख्त का प्रभाव" प्रथम संस्करण, प्रेम प्रकाशन मंदिर
14. गर्ग, उमा (2000) "संगीत का सौन्दर्यबोध" प्रथम संस्करण, संजय प्रकाशन
15. निशांतकेतु (1989) "नाटक और मंच" प्रथम संस्करण, सीमान्त प्रकाशन
16. गुप्त, डॉ. सोमनाथ (1981) "पारसी थियेटर: उद्गम और विकास" प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन
17. स्टैनिसलावस्की के अभिनय सिद्धांत, अनुवाद: सुरेश वर्मा क्रियेटिव ऑफसेट, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

18. संगीत कला विहार, मासिक पत्रिका, अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई
19. छायानट, त्रैमासिक पत्रिका, संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ
20. संगीत, मासिक पत्रिका, हाथरस प्रकाशन लखनऊ